

खण्ड – 1

इकाई – 1

विद्यालय अध्ययन अनुशासन : प्रकृति, विकास, लक्षण

Academic Disciplines : Nature, Evolution (Characteristics)

अध्ययन क्षेत्र की प्रकृति :-

“कोई भी विषय जो स्वतंत्र रूप से तथ्यों के आधार पर कब, कहाँ, क्यों, कैसे आदि प्रश्नों का उत्तर दें सके में समर्थ होते हैं तो उस विषयवस्तु को उसकी प्रकृति के अनुसार अलग-अलग अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत रखा जा सकता है।

अध्ययन क्षेत्र का रूप :-

यह सकारात्मक अध्ययन माना गया है – यह समाजशास्त्री अगस्ट कोम्टे (1798–1857) के द्वारा विकसित किया गया। इसमें प्रमाणित ज्ञान ही वैधानिक ज्ञान है, इस प्रकार का ज्ञान वैज्ञानिक विधि के माध्यम से स्वीकार्य है। वैज्ञानिक ज्ञान से अभिप्राय –

- (i) जो अभिसुपुष्टि से प्राप्त होता है।
- (ii) वैज्ञानिक विधि अर्थात् अन्वेषण की वह तकनीक है। जो घटना का अवलोकन करें।
- (iii) प्रयोग कर परिणाम को प्राप्त करें।
- (iv) तार्किक मापन करें।
- (v) विषय के विशिष्ट सिद्धांत को तर्क पर या कारणों के आधार पर स्पष्ट करें।

Ephistemology - सकारात्मक शब्द का अर्थ मूल्यरहित या उद्देश्यात्मक उपागम द्वारा मानवता का अध्ययन क्षेत्र है। जो प्रकृति विज्ञान के माध्यम से अध्ययन करता है।

अगस्ट काम्टे ने देखा व अनुभव किया कि – तत्व मीमांसा Metaphysics इसका स्थान वैज्ञानिक विधि ने विचारों के इतिहास में तत्व मीमांसा का स्था तथा विज्ञान के दर्शन का स्था ले लिया है। सत्य की चाह में समाज तीव्र गति से उत्तरोत्तर स्तर से गुजरता है, जिन्हें काम्टे ने तीन स्तर पर नियम या सार्वभौमिक नियम का नाम दिया है –



अनुशासन —

अनुशासन से अभिप्राय शिक्षा, चारित्रिक विकास, स्वास्थ्य विकास करके एवं कु-संस्कारों को समाप्त कर व्यक्ति के अंदर उत्तम संस्कार का विकास करना है। अनुशासन वह चारित्रिक परिष्कार है, जिसको प्राप्त कर आचरण तो सुन्दर होते ही है, जीवन में निपुणता, दक्षता और विकास का भी प्रादुर्भाव होता है। अनुशासन की मथनी से मथित होकर जीवन नवनीत के समान सुचिक्कन, कोमल लाभकारी तथा मुलायम बन जाता है। सच तो यह है कि आत्मनियंत्रण तथा आत्मसंयम को ही अनुशासन कहते हैं। अनुशासन मानव की वह विशिष्टता है, जो उसे पशु एवं मानवेतर प्राणियों से ऊँचा स्थान प्रदान करती है। अनुशासन समग्र जीवन की वह शिक्षा है जो मानव के आचरण मन तथा आत्मा का परिष्कार करती है।

अनुशासन का अर्थ वस्तुतः व्यक्तित्व का शिक्षण, परिष्करण एवं स्वास्थ्य विकास है। अनुशासन कु-संस्कारों को खत्म करके सुन्दर एवं स्वस्थ संस्कारों का निर्माण करता है।

अनुशासन संबंधी पुरातन विचारधारा —

प्राचीनकाल में अनुशासन को सीमित एवं संकुचित अर्थ में ग्रहण किया जाता था। विद्यालयों में अनुशासन शब्द के उच्चारण से ही भय तथा अत्याचार के वातावरण की सृष्टि होती थी। वस्तुतः प्राचीनकाल में विद्यालय के बाहर तथा भीतर सभी जगह निरंकुशलता का साम्राज्य था। समाज में निरंकुश शासन का राज्य था जो विद्यालय में भी निरंकुश तथा निर्दय प्रधानाध्यापक एवं शिक्षक का दंडयुक्त अनुशासन था। उस समय छात्रों को भय तथा शारीरिक दंड से बल पर नियंत्रण में रखना ही अनुशासन समझा जाता था। कड़े नियम का पालन करना छात्रों का कर्तव्य था। गुरु आज्ञा का उल्लंघन अक्षम्य अनुशासनहीनता के लिए कोमल बच्चों को कठोर शारीरिक दंड भोगने पड़ते थे उस समय विद्यालय अनुशासन की विधायिका सिर्फ छड़ी थी। ऐसे उदाहरण भी कम नहीं हैं जब शिक्षकों ने छोटी-छोटी गलतियों के कारण छात्रों की चमड़ी उधेड़ दी। शिक्षक छात्रों के आत्मसमर्पण पर ही संतुष्ट होते थे। प्रधानाध्यापक तो निरंकुश, हृदयहीन तथा कठोर होता ही था। प्राचीन समय में अनुशासन का यही स्वरूप था। इतना जरूर था कि अनुशासन का न तो स्थायी प्रभाव था और न आंतरिक ही। प्यार और आदर के द्वारा आंतरिक रूप से आचरण में विकास होता है। यह कार्य दंड एवं डर के द्वारा तो सर्वथा असंभव ही था।

अनुशासन संबंधी आधुनिक विचारधारा —

आधुनिक युग के आगमन तथा मनोविज्ञान के विकास के साथ अनुशासन ही पुरातन विचारधारा खत्म सी हो गई। अब दंड एवं कठोर नियंत्रण का स्थान प्यार, स्व-शासन एवं स्वतंत्रता ने ले लिया। आज शिक्षक के हाथ से डंडा गायब हो चुका है। पूर्व की तरह शिक्षक अब सैनिक अथवा पुलिस अधिकारी के सदृश आचरण नहीं करता। शिक्षक तो आज अभियंता है — मानवीय अभियंता। वह पूर्ण विकसित एवं उपयोगी मानव का निर्माण करता है — प्यार, सहानुभूति एवं कल्पनाशीलता से। अतः अनुशासन की आधुनिक विचारधारा की गंगोत्री स्वतंत्रता है, कठोर नियंत्रण नहीं। आधुनिक विचारधारा के अनुसार अनुशासन धनात्मक है, ऋणात्मक नहीं। सच तो यह है कि

आत्मानुशासन ही सच्चा अनुशासन है। सयर्बन ने कहा भी है – "True discipline should be mainly positive and constructive rather than negative and restrictive". अनुशासन की सार्थकता सृजनात्मक होने में है। सच्चा अनुशासन निर्माण करता है संहार नहीं। चरित्र एवं व्यक्तित्व का निर्माण ही तो अनुशासन का परम लक्ष्य है।

सृजनात्मक अनुशासन धनात्मक उपायों द्वारा विकसित होता है, ऋणात्मक द्वारा नहीं। यहाँ यह स्मरणीय है कि दंड कदापि सृजनात्मक नहीं हो सकता। वह तो मूलतः ऋणात्मक ही है। दंड द्वारा किसी क्रिया को नियंत्रित किया जा सकता है, किसी गुण का सृजन नहीं। उदाहरण से स्पष्ट है – दंड द्वारा किसी बच्चों को झूठ बोलने से रोका जा सकता है, किन्तु उसके अंदर सत्य के प्रति प्रेम नहीं उत्पन्न किया जा सकता। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने तो कहा कि वहीं अनुशासन सार्थक है जो शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति से सहायक हो वह बच्चों को गणतंत्रात्मक समाज के योग्य नागरिक बनाने में सहायक हो।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि आधुनिक विचाराध्या के अनुसार सच्चा अनुशासन सृजनात्मक, धनात्मक तथा स्नेह एवं सहानुभूति पर आधारित होता है। उसका विकास आत्मनियंत्रण एवं आत्मसंयम के रूप में होता है।

टी.पी. नन् के अनुसार "अपनी प्रवृत्तियों को रोककर उनका इस प्रकार नियंत्रण करना है कि अपव्यय एवं अकुशलता के स्थान पर मितव्ययिता एवं कुशलता प्राप्त की जा सकें।"

विद्यालय में अनुशासन का महत्व –

व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों दृष्टिकोण से अनुशासन का मानव के जीवन में अत्यन्त महत्व है। एक संस्था के सदस्य जितने अधिक अनुशासित होते हैं, वह संस्था उतनी ही अधिक उन्नतिशील होती है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वतंत्रता का पूरा अधिकार है, यही कारण है कि समाज में हर व्यक्ति स्वतंत्रता सीमित होती है। किसी एक की स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं है कि वह दूसरे की स्वतंत्रता का हनन करें या उसे हानि पहुंचाए। अनुशासन के द्वारा व्यक्ति की इस स्वतंत्रता में नियंत्रण किया जाता है। अतः अनुशासन का किसी भी क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। विद्यालय में शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया को सुचारु रूप से चलाने के लिए भी अनुशासन की आवश्यकता है। विद्यालय द्वारा सम्पन्न होने वाली सभी क्रियाओं में जैसे ज्ञानार्जन, आदतों का निर्माण, क्षमाताओं एवं कुशलताओं का विकास करने के लिए अनुशासन की आवश्यकता होती है। बच्चों में समायोजन की आदत विकसित करने के लिए अनुशासन की आवश्यकता पड़ती है। अतः विद्यालय के प्रत्येक कार्य की सफलता के लिए अनुशासन का विशेष महत्व है। विद्यालय में अनुशासन के महत्व को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिए उसकी उपयोगिता को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जाता है –

- विद्यालय प्रबंध को सुचारु रूप से चलाने में सहायक।
- विद्यालय की उन्नति व प्रगति में सहायक।
- छात्रों के हृदय में शिक्षक के प्रति सम्मान का भाव उत्पन्न करने में सहायक।
- शिक्षक छात्र सम्बन्ध के सुंदर व मधुर बनाने में सहायक।
- कार्य को सुचारु रूप से संचालित करने में सहायक।

- वातावरण को दूषित एवं अनैतिक होने से बचाने में सहायक।
- छात्रों को पूर्ण नागरिक के रूप में विकासित करने में सहायक।
- छात्रों की छिपी शक्ति के उन्मुखीकरण तथा विकास में सहायक।
- छात्रों के बीच व्याप्त उदंडता, उद्वेग आदि प्रवृत्तियों का दमन एवं मार्गान्तीकरण में सहायक।
- मानवीय एवं सामाजिकता के विकास में सहायक।

अनुशासन का अर्थ एवं परिभाषा —

अनुशासन शब्द अंग्रेजी के शब्द Discipline का हिन्दी रूपान्तरण है। इस शब्द की व्युत्पत्ति Discipline शब्द से मानी जाती है। इसका अर्थ है शिष्य, छात्र या शिक्षक का अनुगामी। इस प्रकार शिक्षक का अनुमान करना अर्थात् शिक्षक की आज्ञा का पालन करना ही अनुशासन है। अनुशासन के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कुछ विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, जिनका विवरण निम्न प्रकार है :—

नन् क शब्दों में — श्री टी.पी. नन् ने अनुशासन का अर्थ बताते हुए कहा — “अपनी भावनाओं और शक्तियों को नियंत्रण के अधीन करना जो अव्यवस्था को व्यवस्था प्रदान करता है”। इस कथन से स्पष्ट है कि अनुशासन के अंतर्गत व्यक्ति को अपनी मुक्त भावनाओं एवं शक्तियों को किसी निर्धारित नियन्त्रण द्वारा नियमित तथा नियंत्रित करना होता है। अनुशासन समाज में व्यवस्था बनाए रखने में सहायक है।

एच. मार्टिन के अनुसार — “अनुशासन का अर्थ है, व्यवहार के कुछ निश्चित नियमों का पालन करना, सीखना। अनुशासन का अनिवार्य गुण आज्ञाकारिता है अर्थात् नियमों एवं अधिकारियों के प्रति आज्ञाकारिता होनी चाहिए”।

डी.वी. के अनुसार — जॉन डी.वी. ने नियन्त्रण की क्षमता के रूप में परिभाषित किया। “अनुशासन का अर्थ— व्यवस्था की शक्ति और कार्य करने के लिए उपलब्ध साधनों पर नियंत्रण की क्षमता है”।

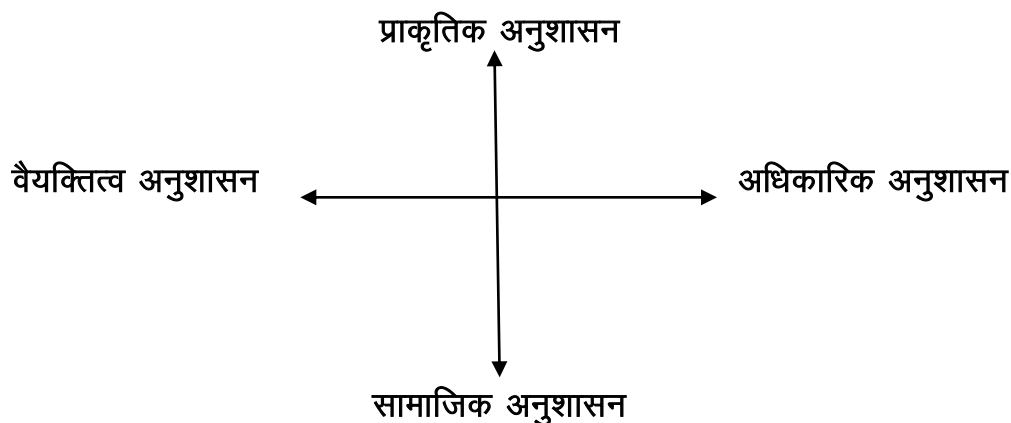
बोर्ड ऑफ एजुकेशन के अनुसार — “अनुशासन वह साधन है, जिसके द्वारा बच्चों की व्यवसी, उत्तम आचरण और उत्तम निहित सर्वोत्तम गुणों की आदत को प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है”। अर्थात् अनुशासन एक महत्वपूर्ण साधन है। इससे आचरण तथा गुणों का सुविकास होता है।

अनुशासन की अवधारणा के सम्बन्ध में एक आधुनिक दृष्टिकोण का विकास हो रहा है। पारस्परिक रूप से अनुशासन स्थापित करने के लिए दमन को मुख्य साधन माना जाता था। पाठशालाओं में अनुशासन बनाये रखने के लिए बच्चों को शारीरिक दण्ड देने का प्रचलन था उस काल में बच्चों की भावनाओं, इच्छाओं और जन्मजात प्रवृत्तियों को कोई महत्व नहीं दिया जाता था, लेकिन वर्तमान में मनोवैज्ञानिक तथ्यों को ध्यान में रखा जाता है और बच्चों की इच्छाओं तथा भावनाओं तथा मूल-प्रवृत्तियों को प्राथमिकता दी जाती है। अब दमन के स्थान पर सृजन को महत्व दिया जाता है। नवीन विचाराधारा के अनुसार, अनुशासन को मुलर ने इस प्रकार परिभाषित किया

है। “अपने आधुनिकता और सम्यक रूप में अनुशासन का अर्थ है – बालकों और बालिकाओं को प्रजातांत्रिक जीवन के लिए तैयार करना। अनुशासन का ध्येय है – ज्ञान, शक्तियों, आदतों, रुचियों और आदर्शों के प्राप्त करना जिनका निर्माण उसकी स्वयं की उसके साथियों की और समग्र रूप में समाज की भलाई होता है।”

अनुशासन के स्वरूप अथवा प्रकार

अनुशासन के निम्नलिखित चार प्रकार हैं –



★ **प्राकृतिक अनुशासन** – प्राकृतिक अनुशासन के अंतर्गत बच्चों पर किसी प्रकार के बाहरी दबाव अथवा नियन्त्रण को लागू नहीं किया जाता। इस प्रकार के नियन्त्रण के मुख्य समर्थक – रूसों तथा स्पेन्सर थे। इन शिक्षा दार्शनिकों के मतानुसार बच्चों को अपने आप में स्वतंत्र रहने देना चाहिये। बालकों को स्वयं अपनी आंतरिक प्रेरणा से कार्य करना चाहिए जब वह स्वयं अपने विवेक से कार्य करेंगे, तो क्रमशः उन्हें विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त होंगे तथा इन्हीं अनुभवों से उनमें अनुशासन का विकास होगा। इस प्रकार स्वतः विकसित किया गया अनुशासन जीवन व्यतीत करने का वास्तविक महत्व समझ में आ जायेगा।

★ **अधिकारिक अनुशासन** – अधिकारिक अनुशासन में बच्चों को किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं दी जाती है। बच्चों को हर प्रकार से अपने बड़ों के नियन्त्रण तथा अधिकार में रहना होता है। बच्चों को अपनी इच्छा से सामान्य रूप से कोई भी कार्य करने की छूट नहीं होती। इस प्रकार के अनुशासन में बड़ों के आदर्शों एवं निर्देशों का सर्वाधिक महत्व हाहेता है। घर पर बच्चों को अपने अभिभावकों का तथा स्कूल में शिक्षकों का हर आदेश मानना चाहिये। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि अधिकारिक अनुशासन बाहर से थोपा जाने वाला अनुशासन होता है।

★ **वैयक्तिक अनुशासन** – इस प्रकार का नियन्त्रण बालकों के लिए नहीं, बल्कि परिपक्व व्यक्तियों के लिए होता है। जब व्यक्ति में समुचित विवेक का विकास हो जाता है तब उसे स्वयं ही मालूम हो जाता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित है, क्या नियमित है और क्या अनियमित है। वह स्वयं ही उचित तथा नियमित का चुनाव करता है। इस नियन्त्रण में किसी प्रकार का बाहरी दबाव अथवा नियन्त्रण नहीं थोपा जाता। इसलिए इसे “आत्म अनुशासन” या “आत्म-नियन्त्रण”

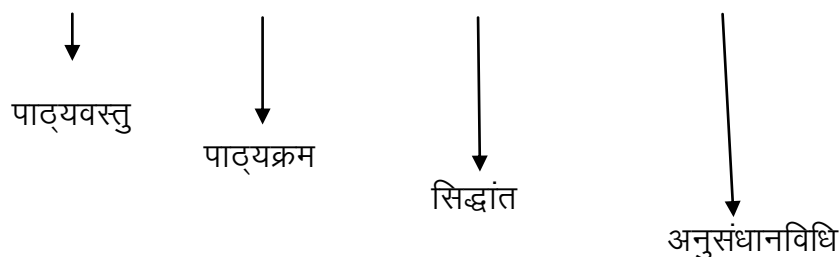
कहते हैं। इस प्रकार के अनुशासन में व्यक्ति की अपनी संकल्प शक्ति विशेष रूप से सहायक होती है।

★ **सामाजिक अनुशासन** — अनुशासन का एक अन्य स्वरूप “सामाजिक अनुशासन” है। इस अनुशासन का निर्धारण सामाजिक मान्यताओं द्वारा होता है। प्रत्येक समाज का यह नियम है कि सामाजिक मान्यताओं के अनुसार कार्य करने पर समाज व्यक्ति की प्रशंसा करता है और सामाजिक मान्यता के विपरीत निन्दा की जाती है। इसी प्रशंसा तथा निन्दा के माध्यम से सामाजिक अनुशासन लागू किया जाता है। सामान्य रूप से सामाजिक अनुशासन लागू किया जाता है। सामान्य रूप से प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक निन्दा से बचना चाहता है तथा यह चाहता है कि उसके कार्यों की प्रशंसा की जाये। इसी धारणा से सामाजिक अनुशासन बना रहता है।

अनुशासन के गुण — स्वअध्ययन का उद्देश्य

जिन मानदंडों या गुणों के आधार पर विषय को एक अध्ययन क्षेत्र के रूप में पहचाना जाता है, ये निम्न हैं :—

- अध्ययन क्षेत्र का अपना अनुसंधान क्षेत्र होता है, जिसे अन्य अध्ययन के साथ आदान-प्रदान किया जा सकता है।
- अध्ययन क्षेत्र का स्वयं का विशिष्ट ज्ञान संचय होता है, जो अनुसंधान से सम्बंधित व भिन्न होता है, इसका अन्य विषयों के साथ सम्बंध नहीं होता।
- अपनी स्वयं की विशिष्ट अनुसंधान विधि होती है।
- स्वयं का घोषणा पत्र होता है।
- स्वयं की यांत्रिकी शब्दावली होती है, जो अनुसंधान के लिए प्रयोग में लायी जाती है।
- स्वयं के सिद्धांत व अवधारणा होती है। जिसमें प्रभावी संचय ज्ञान होता है। यह जरूरी नहीं है कि यह सभी गुण एक साथ देखने को मिले, जिसके आधार पर अन्य क्षेत्रों से उसे जोड़ा जाए। इस अध्ययन क्षेत्र की नींव है —

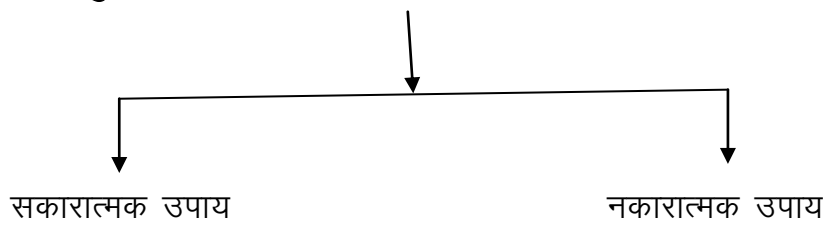


19वीं शताब्दी में जर्मन विश्वविद्यालय की शैक्षिक संस्थाओं के द्वारा मूलरूप से अध्ययन शब्द को प्रयोग में लाया जाने लगा जो नवीन व विस्तृत सूचनाएँ प्रदान करने का साधन के रूप में सामने आया। 20वीं शताब्दी में इसे अन्य देशों के द्वारा अपना लिया गया। किसी भी विषय को

अनुशासित बनाने के लिए उसकी प्रकृति विशेषता, क्षेत्र एवं अध्ययन विधियाँ निर्धारित होती है। इस प्रकार प्रत्येक विषय के अध्ययन क्षेत्र को निम्न बातों के द्वारा समझा जा सकता है –

- समस्या का प्रकार, कार्य क्रिया।
- समस्या से सम्बंधित परिणाम।
- अध्ययन का इतिहास।
- अध्ययन की प्रकृति।
- अध्ययन की परिभाषा।
- अध्ययन की शिक्षण विधि।
- अध्ययन का अधिगम व बुद्धि का मापन तार्किक चिन्तन एवं अवबोध।
- अध्ययन के उपकरण व समस्या समाधान हेतु विधियाँ व उपकरणों का प्रयोग।
- ज्ञान व कौशल जो व्यक्तिगत क्षमता के आधार पर विभिन्नता बताता है।

अध्यापक द्वारा अनुशासन स्थापित करने के उपाय :-



- (i) अध्ययन-अध्यापन की सुविधा।
- (ii) अध्यापक का व्यक्तित्व।
- (iii) अभिभावक-अध्यापक सहयोग।
- (iv) पुरस्कार।
- (v) अनुशासनहीन क्षेत्रों के साथ सहानुभूति एवं धैर्य का व्यवहार।
- (vi) अध्यापन विधि सुंदर, आकर्षक तथा मनोवैज्ञानिक।
- (vii) विद्यालयीन स्वस्थ परंपरा का निर्माण।
- (viii) नैतिक शिक्षा।
- (ix) छात्रों को उत्तरदायित्व प्रदान करना।
- (x) सह-शैक्षणिक क्रियाशीलता।
- (xi) संगठित सामूहिक खेलकूद।

(1) सकारात्मक उपाय : सकारात्मक उपाय तभी कारगर होता है, जब उपयुक्त वातावरण हो। कहने का तात्पर्य यह है कि सकारात्मक उपाय के लिए उपयुक्त वातावरण का सृजन आवश्यक है। उपयुक्त वातावरण और सोद्देश्य शैक्षणिक क्रियाशीलन के द्वारा छात्रों में स्वअनुशासन का गुण

स्वाभाविक रूप से विकसित होता है। इसलिए यह सकारात्मक उपाय कहलाता है। आगे इन उपायों का उल्लेख करते हैं।

(i) अध्ययन-अध्यापन की सुविधाएँ — विद्यालय में छात्रों के लिए अध्ययन-अध्यापन की सुविधाएँ बहुत आवश्यक हैं, इनसे अनुशासन स्थापना में बड़ी सहायता प्राप्त होती है। अवकाश के समय छात्र पुस्तकालय का उपयोग करते हैं। अतः इसमें उपयोगी पुस्तकें होनी जरूरी हैं। विद्यालय का भवन तथा उसके कमरे भी काफी बड़े तथा साफ-सुथरे हों। हवा की उत्तम व्यवस्था, साफ-सफाई व मैदान काफी बड़ा तथा खुला हो। वातावरण स्वास्थ्यवर्द्धक हो इससे छात्रों में प्रफुल्लता, उत्साह तथा प्रगति की भावना विकसित होती है तथा वे स्वतः अनुशासित होते हैं।

(ii) अध्यापक का व्यक्तित्व — शिक्षा का मुद्रा, वाणी, सौम्यता, सहृदयता, सहानुभूति और ममता न केवल उसे लोकप्रिय बनाती है बल्कि छात्रों को भी आकर्षित व प्रमाणित करती है। छात्रों में यह गुण स्वतः ही प्रविष्ट हो जाता है। इससे छात्र-शिक्षक के निकट सम्पर्क में आते हैं। शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशील होना जरूरी है। छात्रों में अनुशासन स्थापित करने में शिक्षक का व्यक्तित्व बहुत ही कारगर होता है।

(iii) अभिभावक-अध्यापक सहयोग — अभिभावक के सहयोग से छात्रों के विषय में अधिक जानकारी अध्यापक को प्राप्त होती है। इससे छात्रों के साथ उचित व्यवहार का मार्ग प्रदशस्त होता है। साथ ही बच्चों की प्रगति-अप्रगति व दुर्गुणों की जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार दोनों के सहयोग से अनुशासन का गुण छात्रों में निश्चित रूप से होता है।

(iv) पुरस्कार — इस भावना से छात्रों में प्रतियोगिता की भावना का विकास होता है तथा विषय में रुचि बढ़ती है। पुरस्कार द्वारा छात्रों में सुद्व्यवहार एवं स्वाध्याय में रुचि की अभिवृद्धि होती है।

(v) अनुशासनहीनता छात्रों के साथ सहानुभूति एवं धैर्य का व्यवहार है :- अनुशासनहीनता के पीछे अशांत परिवार, माता-पिता का कठोर व्यवहार तथा किसी शिक्षक की कठोरता का भी कम हाथ नहीं होता। अतः ऐसे बच्चे सहानुभूति ममता एवं अपनाप के भूखे होते हैं जिससे उनमें अनुशासन के स्वर्णिम गुणों का विकास हो जाएगा।

(vi) अध्यापन-विधि सुन्दर, आकर्षण तथा मनोवैज्ञानिक — जो शिक्षक आकर्षण, सुन्दर तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से अध्यापन करता है। उसके वर्ग में छात्र पूर्ण मनोयोग एवं उत्साह से बैठते तथा पढ़ते हैं, और इसका विपरीत शिक्षक के वर्ग में अनिच्छा से जाता है तथा अनुशासनहीनता के कार्य करता है। अतः यह स्पष्ट है कि सुन्दर व आकर्षण अध्ययन विधि द्वारा अध्यापन का भी अनुशासन स्थापना में बहुत बड़ा हाथ है।

(vii) विद्यालयीन स्वस्थ परंपरा का निर्माण :- विद्यालयों में स्वस्थ परंपराओं तथा नियमों का निर्माण अनुशासन-स्थापना में बड़ा सहायक होता है। जहां इनका पालन होता है। वहां विद्यार्थी अनुशासन के मार्ग पर अग्रसर होते हैं।

(viii) नैतिक शिक्षा — विद्यालय में नैतिक शिक्षा की व्यवस्था हो। महापुरुषों के जीवन चरित्र तथा उपदेशात्मक कथा से छात्रों को परिचित कराया जाए इससे वे सत्कार्य की ओर प्रेरित होंगे तथा स्वतः ही अनुशासित होंगे।

(ix) छात्रों को उत्तरदायित्व प्रदान करना — छात्रों को उत्तरदायित्व प्रदान कर देने पर स्वतः ही उनमें अनुशासन के गुण पनप जाते हैं। इसके लिए छात्र संसद, छात्र मंत्रिमण्डल आदि की स्थापना की जा सकती है।

(x) सह-शैक्षणिक क्रियाशीलन — अनुशासन का गुण विकसित करने के लिए सह-शैक्षणिक क्रियाशीलों का बहुत महत्व है। वाद-विवाद, खेलकूद, अभिनय, कवि गोष्ठी, साहित्य-परिषद्, समाज सेवा, बालचर-संगठन सैनिक शिक्षा आदि मुख्य सह शैक्षणिक क्रियाशीलन हैं। इससे स्वतः अनुशासन के गुण विकसित हो जाते हैं।

(xi) संगठित सामूहिक खेल-कूद — इसके द्वारा छात्रों में अनुशासन के गुणों का विकास करते हैं। संगठित सामूहिक खेल-कूद में फुटबॉल, क्रिकेट, हॉकी, बॉलीबॉल, बास्केटबॉल, कबड्डी आदि प्रमुख हैं। इनमें शिक्षा उपसंस्थित रहता है। इससे अवकाश के समय का सदुपयोग होता है। स्वास्थ्य में वृद्धि, सामाजिकता का विकास, भ्रातृत्व एवं सहयोग भावना की वृद्धि होती है।

(2) नकारात्मक उपाय : प्रमुख नकारात्मक उपाय दंड है। उपाय के तहत छात्रों को अनुशासनहीनता के कार्यों को करने के लिए दंडित किया जाता है तथा भविष्य में ऐसा करने से उन्हें रोका जाता है। दंड भी कई तरह के होते हैं —

- ❖ शारीरिक दण्ड
- ❖ आर्थिक दण्ड
- ❖ सामाजिक दण्ड
- ❖ नैतिक दण्ड

नकारात्मक उपाय जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, आधुनिक युग में उपयुक्त तथा प्रभावकारी नहीं माने जाते हैं। आज जो सृजनात्मक और सकारात्मक उपायों को ही अनुशासन के गुणों के विकास के लिए उपयुक्त एवं मनोवैज्ञानिक माना जाता है।

विद्यालयों में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता के कारण :

हमारा देश 1947 ई. में स्वतंत्र हुआ तथा 1950 ई. की 26 जनवरी को गणतंत्र घोषित किया गया। उसके बाद वर्षों बीत गए, किन्तु हमारे विद्यालयों एवं महाविद्यालयों का प्रांगण कभी शांत और अनुशासित न हो सका। छात्रों में अनुशासनहीनता की भावना तीव्र गति से बढ़ती गई और अब तो यहां तक नौबत आ गई कि छात्रों द्वारा तोड़-फोड़, हिंसा तथा अनैतिक कार्यों की कड़ी-सी लग गई। विद्यालयों के अंदर और बाहर सभी स्थानों में छात्रों की अनुशासनहीनता से आतंक-सा व्याप्त हो गया है। समाज इस अनुशासनहीनता से त्रस्त और भयभीत हो उठा है तथा सामाजिक नेतृत्व के भविष्य पर एक बड़ा-सा प्रश्न-चिन्ह लग गया है। सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक

सभी क्षेत्र छात्रों की अनुशासनहीनता से आतंकित हो उठे हैं। वस्तुतः यह अनुशासनहीनता जहां राष्ट्र के भावी नेतृत्व के निर्माण-मार्ग की बाधा है, वहीं हमारे महान् गणतंत्र के लिए बहुत घातक भी। अतः हमारे लिए इस बढ़ती हुई अनुशासनहीनता के मूल कारणों पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

नीचे हम उन कारणों पर संक्षेप में प्रकाश डालते हैं :-

1. दोषपूर्ण शिक्षा-प्रणाली — वर्तमान शिक्षा-प्रणाली सर्वथा दोषपूर्ण है। यह विशेष रूप से बौद्धिक विकास पर बल प्रदान करती है। अतएव एकांगी तथा जीवन से दूर है। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात मात्र नौकरी के सिवा और कोई जीविकोपार्जन का साधन छात्रों को नजर नहीं आता। अतः वे अपने जीवन की वास्तविक समस्याओं का समाधान करने में पूर्णतः असफल रहते हैं। अंधकारमय भविष्य प्रदान करने वाली शिक्षा में उनका विश्वास नहीं रह जाता और अवसर आने पर वे विद्रोह कर उठते हैं।

इसके अतिरिक्त आज की शिक्षा परीक्षाक्रांत है। अतः उसमें भी अनैतिक उपायों द्वारा पास करने का प्रयत्न किया कराया जाता है। इस तरह अनुशासनहीनता का पनपना स्वाभाविक ही है।

2. आर्थिक कठिनाइयां — हम सभी अपनी राष्ट्रीय दरिद्रता से परिचित हैं। इसके कारण हमारे देश के विद्यालय की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। सरकार भी इसके लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था करने में पूर्ण रूप से असमर्थ है। अतः विद्यालयों में मकान, भूमि, उपस्कर, सहायक शिक्षण-उपादान तथा योग्य शिक्षक का स्पष्ट अभाव है। इस अवस्था में शिक्षक तथा छात्र दोनों में असंतोष उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इतना ही नहीं, समाज में शासन का बाजार अभी भी गर्म है। फलस्वरूप विद्यालय में शोषित तथा शोषक दोनों वर्गों के छात्र पढ़ते हैं और एक-दूसरे के प्रति घृणा तथा विद्रोह की भावना पालते हैं। इस प्रकार विद्यालयों में अनुशासनहीनता का जन्म होता है।

3. राजनीतिक दलों का प्रभाव — देश में विभिन्न मतवाले अनेक राजनीतिक दल हैं। इन दलों द्वारा अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए छात्रों का उपयोग किया जाता है। चुनाव-प्रचार तथा अन्य प्रचार एवं संगठन के कार्य में भी वे छात्रों का खुलकर उपयोग करते हैं। इस प्रकार छात्रों के बीच मतभेद, झगड़े तथा मारपीट होती है। यही नहीं, कभी-कभी तो ये दल छात्रों को हिंसात्मक कार्य के लिए भी प्रोत्साहित करते हैं। आज की अवस्था में अनुशासनहीनता का यह एक बहुत बड़ा कारण हो गया है।

4. सामाजिक स्तर का पतन — यदि आंख खोलकर देखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आज हमारे देश का सामाजिक स्तर पतन के गर्त में जा पड़ा है। स्वार्थ, घृणा, वैमनस्य, असहयोग, दुष्टता, भ्रष्टाचार एवं भौतिक लाभ का बाजार गर्म है। हमारे छात्र इसी समाज से आते हैं, इसी में जन्में हैं, इसी में पलते हैं तथा इसी हवा में सांस लेते हैं। अतः उनमें भी यदि उक्त दुर्गुणों का समावेश आज हो रहा है, तो इसमें क्या आश्चर्य है।

5. शिक्षकों में नेतृत्व के गुणों का अभाव — जैसे समाज में नैतिक गुणों का अभाव है, वैसे ही आज अधिकांश शिक्षकों में नेतृत्व के गुणों का अभाव है। आज वह अगुआ नहीं रह गया है, वह तो अब मात्र पिछलग्गू है। वह तो आज अपने आदर्शों को खोकर मात्र दो-चार प्राइवेट ट्यूशन के पीछे पागल है। यही कारण है कि इस पेशे में बहुत कम कुशाग्रबुद्धि और प्रखर व्यक्ति आते हैं। इसका

फल है कि शिक्षक का प्रभाव न तो समाज पर है और न छात्र पर ही है। नेतृत्व के गुणों से हीन शिक्षक आज अनुशासन के विकास में असमर्थ है।

6. शक्ति के समुचित उपयोग का अभाव – छात्रों और किशोरों में अपार शारीरिक शक्ति होती है। आज इस शक्ति का सदुपयोग विद्यालयों में ही किया जा रहा है। समुचित सह-शैक्षणिक क्रियाशीलों का विद्यालयों में स्पष्ट अभाव है। अतः छात्रों की अतिरिक्त शक्ति एवं उत्साह का पूर्णरूपेण उपयोग नहीं हो पाता और वे अनुशासनहीनता के कार्यों में अनायास ही लग जाते हैं।

7. शिक्षक-छात्र संबंध का अभाव- आज विद्यालयों में छात्रों की संख्या अत्यधिक बढ़ गई है। एक-एक वर्ग में 70-80 छात्र ठूस दिये जाते हैं तथा उच्च विद्यालयों में तो आज हजार-डेढ़ हजार छात्र संख्या सामान्य बात हो गई है। स्पष्ट है कि इस दशा में छात्र और शिक्षक के वैयक्तिक एवं कितने का संबंध असंभव है। अतः छात्र अभियंत्रित समूह के सदस्य होकर अनुशासनहीनता के कार्यों में लग जाते हैं। इसके अतिरिक्त आज शिक्षक और छात्र का संबंध भी अत्यंत कटु हो गया है। आर्थिक लाभ, जातीयता तथा पक्षपात ही शिक्षक-छात्र संबंध के आज आधार हो गए हैं। इस प्रकार अनुशासनहीनता का उदय हो स्वभाविक ही है।

8. घर पर दूषित वातावरण – सामान्यतः भारतीय परिवारों का वातावरण अत्यधिक दूषित होता है। अनपढ़ माँ-बाप तथा संबंधी के साथ बच्चे रहते हैं। अधिकांश परिवारों में शराब पीना, गालीगलौज बकना तथा भद्दे आचरण करा सामान्य बात है। ऐसे परिवार से आनेवाले छात्रों का अनुशासनहीनता होना कोई बड़ी बात नहीं है।

9. छात्रों की समस्या की उपेक्षा – आज छात्रों की समस्या की उपेक्षा की जाती है अथवा उसे छोटी समझकर उसका समाधान नहीं ढूँढ़ा जाता। फलस्वरूप समस्या कालांतर में विशाल हो जाती है तथा इसके विस्फोट से समाज का अस्तित्व ही समाप्त होने लगता है। उदाहरणतः शुल्कवृद्धि, परीक्षा में प्रश्नों का स्तर अथवा छात्र-आवास की समस्या को ही ले सकते हैं। इनकी उपेक्षा की जाती है और ऐसा देखा गया है कि बाद में इन्हीं के आधार पर बहुत बड़ा हिंसक एवं विनाशक आंदोलन खड़ा हो जाता है।

10. उचित मार्गदर्शन का अभाव – आज मनोविज्ञान में छात्रों के उचित मार्गदर्शन (Guidance) का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। किन्तु इसके-दुक्के विद्यालयों के छात्रों को ही यह सौभाग्य प्राप्त है। अधिकांश विद्यालयों के छात्रों को न तो विषय-संबंधी और ही जीविका-संबंधी मार्गदर्शन प्राप्त होते हैं। फलस्वरूप उनमें अनुशासनहीनता और मार्ग भ्रष्टता के बीच वपन हो जाते हैं।

11. अवकाश के सदुपयोग की व्यवस्था नहीं – भारतीय विद्यालयों में अवकाश के क्षणों का सदुपयोग न तो छात्र कर पाते हैं और न शिक्षक। सुन्दर वाचनालय, हॉवी-कक्षा अथवा अन्य सृजनात्मक मनोरंजन की व्यवस्था का विद्यालयों में सर्वथा अभाव है। इसका परिणाम होता है कि अवकाश में छात्र निठल्ले, बेकार गिरोहों में घूमते तथा खुराफात सोचा करते हैं।

12. किशोरावस्था तथा युवावस्था की भावनाओं की अवहेला – विद्यालयों में किशोरावस्था के छात्र होते हैं। उनकी भावनाएं एवं शक्तियाँ अपार तथा कोमल होती हैं। उनका आदर करना हम नहीं जानते हैं। महाविद्यालयों में छात्र-छात्राओं का मिलना, बात करना भी स्वभाविक ही है। उसे भी हम

सहन नहीं करते। फलतः उनकी भावनाओं को ठेस लगती है और उनमें अनुशासनहीनता की भावना बढ़ती है।

अनुशासनहीनता के निराकरण के उपाय :

1. विद्यालय तथा वर्गों में सीमा छात्र-संख्या- वर्गों में छात्रों की निश्चित संख्या निर्धारित हो। इससे वर्ग में भीड़ नहीं हो पाती तथा अध्ययन-अध्यापन अपेक्षित रूप में होता है। इससे एक लाभ यह भी होता है कि विद्यालय की सम्पूर्ण छात्र-संख्या भी सीमित रहती है तथा हंगामा अथवा नियंत्रण की स्थिति नहीं उत्पन्न होने पाती।
2. छात्र-अध्यापक संपर्क-विद्यालय में छात्र-अध्यापक-संपर्क की दृढ़ता तथा स्निग्धता पर ही अनुशासन निर्भर करता है। इससे छात्रों की असुविधा, कठिनाई अथवा मनोभाव को जानने में अध्यापक सफल होता है। मधुर तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से शिक्षक छात्र के हृदय के अत्यधिक निकट आ जाता है तथा उसका प्रभाव उन पर रहता है। यह अनुशासनहीनता को रोकने में बहुत ही सहायक है।
3. शिक्षा-प्रणाली में सुधार तथा उसके उद्देश्य में स्पष्टता – आज शिक्षा-प्रणाली दोषपूर्ण है तथा उसके उद्देश्य भी पूर्णतः स्पष्ट नहीं हैं। अतः आज शिक्षा-प्रणाली को बहुमुखी बनाना है। उसका उद्देश्य योग्य नागरिक के व्यक्तित्व को जीवन एवं समाजनिष्ठ बनाया तथा उद्देश्य को स्पष्टतः शिक्षकों के सामने रखना है। इससे अनुशासनहीनता को बहुत बड़ा नियंत्रण मिलेगा।
4. अध्यापक एवं अध्यापन का स्तरोन्नयन – अध्यापक का आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक स्तरोन्नयन होना अत्यावश्यक है। उन्हें अच्छा वेतन तथा समाज में प्रतिष्ठा प्रदान की जाए। (अब बहुत अंशों में यह प्राप्त है)। इससे अच्छी योग्यता वाले व्यक्ति इस पेशा में आएंगे तथा इस प्रकार अध्यापक का शैक्षिक स्तरोन्नयन स्वतः ही हो जाएगा। जो पहले से इस पेशा में कार्य कर रहे हैं उनकी आर्थिक दशा भी अच्छी होने से अच्छा फल मिलेगा। वे भी अपने कार्य में मन लगाएंगे तथा अपना शैक्षिकस्तर ऊंचा करेंगे। अध्यापन की दिशा में इस प्रकार उन्नति होगी।
5. व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था – विद्यालयों में विभिन्न रुचि एवं बुद्धि-लब्धि के छात्र अध्ययन करते हैं। अतः उन्हें उनकी रुचि एवं बौद्धिक तीव्रता के अनुसार विभिन्न दिशा में ले जाना लाभकारी होगा। इसे ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को विशेष महत्व प्रदा किया जाए। अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप व्यावसायिक शिक्षा में लगे छात्र अनुशासनहीनता के कार्यों में नहीं लगते।
6. किशोरावस्था की अतिरिक्त शक्ति का सदुपयोग – इस अवस्था में छात्रों की शक्ति अपार होती है। उनमें उत्साह एवं कल्पनाशीलता का ज्वर उठता रहता है। वे कुछ भी कर गुजरने को तत्पर रहते हैं। अतः उनकी शक्ति, उत्साह, कल्पना तथा सुधारवादिता को समाज-सेवा, अभिनय, कवि-गोष्ठी, वाद-विवाद-प्रतियोगिता, बालचर संगठन, क्रीड़ादि एवं श्रमदान में लगाकर उनको अनुशासित एवं उपयोगी नागरिक बना सकते हैं।

7. उत्तरदायित्व की भावना का विकास – छात्रों पर उत्तरदायित्व के कार्य सौंपे जाएं। छात्र-संसद, छात्र-मंत्रिमंडल, सहयोग-भंडार एवं अन्य क्रियशीलन के संगठन-संचालन के भार छात्रों पर सौंपे जाएं। इससे उनमें जनतांत्रिक परंपराओं एवं उत्तरदायित्व के भाव जागेंगे तथा वे स्वतः अनुशासित रहेंगे।

8. विद्यालयों में राजनीतिक दलों का प्रवेश निषेध- राजनीतिक दलों द्वारा छात्रों का अपने स्वार्थ के लिए उपयोग निषेध कर दिया जाए। छात्रों का चुनाव-कार्य एवं राजनीतिक स्वार्थ-सिद्धि के लिए उपयोग न किया जाए। इससे अनुशासनहीनता की गति बहुत कुछ धीमी पड़ेगी और वे उच्छृंखल न होने पाएंगे।

9. स्वस्थ वातावरण – विद्यालय में अनुशासन स्थापित करने के लिए उसके आंतरिक एवं बाह्य वातावरण का स्वस्थ होना आवश्यक है। शिक्षक-शिक्षक, प्रधानाध्यापक-प्रबंध-समिति, छात्र-शिक्षक तथा छात्र-छात्र में वैमनस्य तथा झगड़े न हों। इससे विद्यालय का आंतरिक वातावरण स्वस्थ होता है। विद्यालय-प्रांगण का सौंदर्य तथा समीपस्थ स्थानों की सफाई एवं शांति बाह्य स्वस्थता की निशानी है। इससे विद्यालय के छात्रों में अनुशासनप्रियता की भावना स्वतः जागृत होती है।

10. शैक्षणिक उपादानों की पर्याप्तता – आजकल अधिकांश विद्यालयों में शैक्षणिक उपादानों का बहुत ही अभाव है। खाली-पट्ट, उपस्कर, नक्शे, चित्र प्रयोगशाला आदि देखने को भी नहीं मिलते। इससे शिक्षण मात्र मखौल बनकर रह जाता है। यहां तक देखा गया है कि जि विद्यालयों में विज्ञान का अध्यापन होता है, वहां भी प्रयोगशाला नदारद है। यह दयनीय अवस्था यदि अनुशासनहीनता को जन्म देती है तो इसमें क्या आश्चर्य है। अतः विद्यालयों में उक्त शैक्षणिक उपादानों की पर्याप्तता अनुशासन के लिए आवश्यक है।

11. परीक्षा-प्रणाली में सुधार – आज परीक्षा प्रणाली मानसिक स्मरण की वस्तु है। वह मुख्यतः निबंधात्मक (Subjective) बनकर रह गई है। इसमें चोरी और पक्षपात होते हैं तथा मूल्यांकन विश्वस्थ नहीं हो पाता। इसके कारण भी अनुशासनहीनता पनपती है। अतः परीक्षा-प्रणाली में सुधार लाना आवश्यक है। परीक्षा को वस्तुषुद्धि (Objective) बनाया जाए। इससे मूल्यांकन विश्वस्थ हो सकेगा, रटने को प्रश्रय नहीं मिलेगा तथा पक्षपात की गुंजाइश नहीं रहेगी। इस प्रकार अनुशासन का आधार मजबूत होगा।

12. मार्गदर्शन की व्यवस्था – विद्यालयों में छात्रों का मार्गदर्शन (Guidance) करने के लिए प्रशिक्षित एवं योग्य मनोविज्ञान-शिक्षक का होना आज अत्यावश्यक है। इनकी सहायता से छात्र अपना सही अध्ययन-मार्ग चुनने में सफल होंगे तथा इस प्रकार अनुशासित भी रहेंगे।

सकारात्मकता के सिद्धांत – सकारात्मकता के पाँच प्रमुख सिद्धांत हैं –

(1) तर्क अन्वेषण (Logic of Inquiry) – यह सिद्धांत प्रत्येक विज्ञान में एक समान जैसे सामाजिक विज्ञान व प्रकृति विज्ञानों को महत्व देता है। तर्कशास्त्र शब्द अंग्रेजी 'लॉजिक' का अनुवाद है। प्राचीन भारतीय दर्शन में इस प्रकार के नामवाला कोई शास्त्र प्रसिद्ध नहीं है। भारतीय दर्शन में तर्कशास्त्र का जन्म स्वतंत्र शास्त्र के रूप में नहीं हुआ। अक्षपाद गोतम या गौतम (300 ई.) का न्यायसूत्र पहला ग्रंथ है, जिसमें तथाकथित तर्कशास्त्र की समस्याओं पर व्यवस्थित ढंग से विचार

किया गया है। इनमें सर्वप्रथम प्रमाण नाम का विषय या पदार्थ है। वस्तुतः भारतीय दर्शन में आज के तर्कशास्त्र का स्थानापन्न 'प्रमाणशास्त्र' कहा जा सकता है। किन्तु प्रमाणशास्त्र की विषयवस्तु तर्कशास्त्र की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। यूरोप में तर्कशास्त्र का प्रवर्तक एवं प्रतिष्ठाता यूनानी दार्शनिक अरस्तू (384–322 ई.पू.) समझा जाता है। अरस्तू के अनुसार तर्कशास्त्र का विषय चिंतन है, न कि चिंतन के वाहक शब्द प्रतीक। उसके तर्कशास्त्रीय ग्रंथों में मुख्यतः निम्न विषयों का प्रतिपादन हुआ है :

- (1) पद (टर्म्स),
- (2) वाक्य या कथन (स्टेटमेन्ट),
- (3) अनुमान और उसके विविध रूप,

तर्कशास्त्र के संबंध में उक्त मान्यता से एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष अनुगत होता है। यदि किन्हीं कारणों से मनुष्य की चिंतन प्रणाली अथवा तर्कप्रणाली में परिवर्तन या विकास हो, तो उसके अनुरूप तर्कशास्त्रीय मंतव्यों में भी परिवर्तन या विकास हो सकता है। तर्कशास्त्र के इतिहास में ऐसा भी होता है कि कालांतर में चिंतन के पुराने मानदंडों या नियमों में संशोधन आवश्यक हो जाता है, नए चिंतनप्रकारों की सृष्टि के साथ-साथ नवीन तर्कशास्त्रीय नियमों का रूप भी अपेक्षित हो सकता है। यूरोप में जब भौतिक विज्ञान की प्रगति शुरू हुई, तो वहां क्रमशः अरस्तू की निगमनप्रणाली की आलोचना और उससे भिन्न आगमनप्रणाली की परिकल्पना और प्रशंसा भी होने लगी। यूरोपीय वैचारिक इतिहास में इस कोटि का कार्य लार्ड बेकन ने किया। बाद में, वैज्ञानिक अन्वेषण प्रणाली का अधिक विश्लेषण हो चुकने पर, यूरोप के तर्कशास्त्रियों ने निगमनमूलक विचारपद्धति (डिडक्टिव सिस्टम) एवं परिकल्पना निगमनप्रणाली (हाइपोथेटिकल डिडक्टिव मेथड) जैसी अवधारणाओं का विकास किया। आगमनात्मक तर्कशास्त्र (इंडक्टिव लॉजिक) में उन नियमों का विचार किया जाता है, जो निरीक्षित घटनाओं या व्यापारों के आधार पर तत्संबंधी सामान्य कथों की उपलब्धि या निरूपण संभव बनाते हैं। सामान्य कथन प्रायः व्याप्तिवाक्यों का रूप धारण कर लेते हैं। भारतीय प्रमाणशास्त्र में इस प्रश्न को लेकर कि व्याप्तिवाक्य की उपलब्धि कैसे होती है, काफी छानबीन की गई है। जहां-जहां धूम होती है, वहां अग्नि होती है— यह व्याप्तिवाक्य है। स्पष्ट ही हमारे निरीक्षण में धूम और अग्नि के साहचर्य के कुछ ही उदाहरण आते हैं। प्रश्न है, कुछ परिस्थितियों में निरीक्षित दो चीजों के साहचर्य से हम उनके सार्वदेशिक और सार्वकालिक साहचर्य की कल्पना के औचित्य को कैसे सिद्ध कर सते हैं ? इस समस्या को तर्कशास्त्र में आगमनात्मक प्लुति (इंडक्टिव लीप) की समस्या कहते हैं। परिकल्पना निगमन प्रणाली इस उलझन में पड़े बिना सामान्य कथनों अथवा व्याप्तिवाक्यों को प्रामाणिक प्रकल्पना के प्रश्न का समाधान प्रस्तुत कर देती है। संक्षेप में आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषण की प्रणाली यह है :

अनुशासन के सिद्धांत (Principal of Discipline)

अनुशासन के निम्नलिखित सिद्धांत हैं –

(1) अनुशासन का दमनात्मक सिद्धांत

प्राचीनकाल में शिक्षा के क्षेत्र में दमन तथा कठोर दण्ड की प्रथा थी। शिक्षा के क्षेत्र में यह प्रथा राजनैतिक प्रभाव के कारण थी, क्योंकि प्राचीनकाल में राज्य की व्यवस्था बाये रखने के लिये दमन तथा कठोर दण्ड व्यवस्था को ही अपनाया जाता था। इसलिये विद्यालयों में भी अनुशासन बनाये रखने के लिये शारीरिक दण्ड एवं प्रताड़ना को अपना जाता था। उस काल में ऐसा माना जाता था कि बालकों में स्वभाव से ही अनेक बुराईयाँ होती हैं और इन बुराईयों को समाप्त करने के लिये शारीरिक दण्ड आवश्यक है। इस सिद्धांत के अनुसार अध्यापक की हर बात को आदेश समझकर बालक के लिये मानना अनिवार्य है चाहे वह उचित हो या अनुचित।

दमनात्मक अनुशासन के पक्ष में तर्क – दमनात्मक अनुशासन को लागू करने के विषय में मुख्य रूप से निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं :-

- I. दमनात्मक अनुशासन समर्थकों का विचार है कि बिना भय के अनुशासन स्थापित नहीं हो सकता, इसलिये शिक्षक का भय होना अनिवार्य है।
- II. ज्ञान प्राप्त करने के लिये शिक्षक के आदेशों का पालन करना नितान्त आवश्यक है। शिक्षक के आदेशों का पालन तभी हो सकता है जब शिक्षक छात्रों की स्वतन्त्रता का दमन करें, इसलिये अनुशासन दमनात्मक ही होना चाहिये।
- III. इस प्रकार के अनुशासन के समर्थकों का मानना है कि दमन एवं शारीरिक दण्ड से उद्दण्ड बालक भी ठीक हो जाते हैं तथा इन्हें नियंत्रित किया जा सकता है।
- IV. बालक में स्वभाव से ही पाशविक प्रवृत्तियाँ होती हैं तथा इन पाशविक प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने के लिये शारीरिक दण्ड सर्वोत्तम साधन है। यदि बालक की पाशविक प्रवृत्तियों को नियंत्रित कर लिया जाये, तो बालक स्वयं ही शिक्षण-कार्य में संलग्न हो जाता है।
- V. यदि बालकों पर अध्यापकों का कड़ा नियंत्रण न हो, तो कुछ उद्दण्ड छात्र शिक्षकों के प्रति भी अनुचित व्यवस्था कर सकते हैं। इस प्रकार के अनुचित व्यवहार की आशंका को समाप्त करने के लिये अध्यापक को दमनात्मक अनुशासन को बनाये रखना चाहिये।

दमनात्मक अनुशासन के विपक्ष में तर्क – चूँकि वर्तमान युग में दमनात्मक अनुशासन को अच्छा नहीं माना जाता तथा इसका विरोध भी किया जाता है। सेमुअल स्माइल ने दमनात्मक अनुशासन की आलोचना इस प्रकार की है, “शिक्षक क्रूरता और कठोरता को अपनाकर ज्ञान की प्रगति में योग नहीं दे सकता। ये दोनों बातें बालक को मूर्ख और लापरवाह बाने के लिये काफी हैं। मुझे कुछ शिक्षकों की कायरता क्रूरता से सदैव घृणा रही है। वह इन असहाय बच्चों के प्रति जिक्रो उन्हें सौंपा गया है, अपनी शक्ति का प्रयोग केवल इसलिये करते हैं, क्योंकि वे अधिक शक्तिशाली हैं।” दमनात्मक अनुशासन के विपक्ष में मुख्य रूप से निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं –

- I. आधुनिक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों ने सिद्ध कर दिया है कि दमनात्मक अनुशासन बाल-मनोविज्ञान के विरुद्ध एवं अनुचित है, इसलिये विद्यालयां में इसे लागू नहीं करना चाहिये।
- II. मनोवैज्ञानिक अध्ययनों ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि कठोर नियंत्रण तथा निरंतर प्रताड़ना से बच्चों में विभिन्न प्रकार की ग्रन्थियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और बच्चों में हीन भावना तथा विभिन्न मानसिक असामान्यतायें विकसित हो जाती हैं, जो बाद में गम्भीर समस्या का रूप ग्रहण कर लेती हैं।
- III. दमन पर आधारित अनुशासन स्थायी नहीं होता है। दमन क द्वारा बालकों से कुछ समय तक तो आदेशों का पालन कराया जा सकता है, लेकिन उनमें स्थायी सद्गुणों का विकास नहीं किया जा सकता।
- IV. कई बार दमनात्मक अनुशासन तथा कठोर नियंत्रण से बच्चों को शिक्षा के प्रति अरुचि भी हो जाती है तथा इस अरुचि के परिणामस्वरूप या तो वे स्कूल ही नहीं जाते और या स्कूल से भागने लगते हैं। इससे शिक्षा की प्रक्रिया अव्यवस्थित हो जाती है।
- V. दमनात्मक अनुशासन का प्रतिकूल प्रभाव बालक के मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। दमन तथा प्रताड़ना से बच्चों को स्वास्थ्य गिरने लगता है और व्यक्तित्व का सामान्य विकास भी कुण्ठित हो जाता है।
- VI. विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से अब यह सिद्ध हो गया है कि भय का वातावरण सीखने की प्रक्रिया के लिये प्रतिकूल होता है तथा भय के वातावरण में स्मरण किये गये विषयों को बच्चे भूल जाते हैं।

दमनात्मक अनुशासन सिद्धांत के पक्ष में प्रस्तुत किये गये तर्कों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह सिद्धांत पूरी तरह अनुचित है तथा इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। लोकतान्त्रिक देशों में दमनात्मक अनुशासन का कठोर विरोध किया जाता है। बच्चों और अध्यापकों से पारस्परिक सम्बन्ध मधुर होने चाहिये। दण्ड का विरोध करते हुए इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध उपन्यासकार एन्थानी ट्रॉलाप ने कहा है, “विद्यालय अनुशासन को बनाये रखने के लिये यह बात अनुचित लगती है कि स्कूल में शारीरिक दण्ड छात्र के दैनिक जीवन का स्थायी भाग हो।”

(2) प्रभावात्मक अनुशासन सिद्धान्त

प्रभावात्मक अनुशासन सिद्धान्त का प्रतिपादन मुख्य रूप से आदर्शवादियों द्वारा किया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार अनुशासन की स्थापना तोदबाव द्वारा और न ही प्रताड़ना द्वारा ही हो सकती है, बल्कि अनुशासन स्थापित करने के लिये शिक्षक के व्यक्ति का प्रभाव सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन होता है। शिक्षक को योग्य, चरित्रवान और आदर्श व्यक्तित्व वाला होना चाहिये। अपने आदर्श गुणों और व्यक्तित्व से शिक्षक एक आदर्श वातावरण तैयार करता है और इस आदर्श वातावरण को प्रभाव बालकों पर भी पड़ता है तथा बालक भी आदर्श गुणों को अपनाने के लिये प्रेरित होते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार यह सुझाव दिया जाता है कि यदि कभी अनुशासन भंग होने का अवसर आ भी जाये, तो शिक्षक को प्रेम तथा सहानुभूति से बच्चों के सुधार का प्रयास करना चाहिये न कि दण्ड द्वारा दमन करना चाहिये।

प्रभावनात्मक अनुशासन के पक्ष में तर्क — प्रभावात्मक अनुशासन को एक उत्तम प्रकार का अनुशासन माना जाता है। इस अनुशासन सिद्धान्त के संदर्भ में रॉस ने इस प्रकार कहा है —“सत्य है कि प्रभाव का चरित्र पर बहुत गहरा असर पड़ता है। दूसरे शब्दों में, प्रभाव व्यक्तियों के सम्पर्क से प्राप्त करते हैं।” अनुशासन के प्रभावात्मक सिद्धान्त के पक्ष में मुख रूप से निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं —

- I. प्रभावात्मक अनुशासन एक आदर्श अनुशासन है। इसमें छात्र तथा शिक्षक के मध्य मधुर सम्बन्ध प्रेम तथा सहानुभूति का वातावरण होता है। शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन के लिये इसका विशेष महत्व है।
- II. इस प्रकार के अनुशासन में शिक्षक के उच्च चरित्र पर विशेष बल दिया जाता है। इसलिये उत्तम चरित्र वाले शिक्षकों का स्थयी प्रभाव बालकों के व्यक्तित्व पर पड़ता है। इस प्रभाव से प्रेरित होकर बालक हर जगह अच्छा आचरण करने के लिये प्रेरित होते हैं।
- III. प्रभावात्मक अनुशासन न तो अधिक दमन या कठोरता की प्रकृति है और न ही पूर्ण स्वतन्त्रता है। इसलिये इसमें अनुशासन एवं स्वतन्त्रता के समन्वित किया गया है।
- IV. प्रभावात्मक अनुशासन में प्रतिष्ठा—सुझाव को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है। इससे ज्ञान प्राप्ति के लिये बालकों को सरलतापूर्वक प्रेरित किया जा सकता है।

प्रभावात्मक अनुशासन के विपक्ष के तर्क — अन्य सिद्धान्तों के ही समान इस सिद्धान्त की भी आलोचना की गयी है तथा इसके विपक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं —

- I. प्रभावात्मक अनुशासन सिद्धान्त में शिक्षक को सामान्य से अधिक महत्व प्रदान किया जाता है, इसलिये इस बात की सम्भावना रहती है कि शिक्षक में अहंभाव आ जाये तथा वह मनमानी करने लगे। इस स्थिति के प्रतिकूल परिणाम हो सकते हैं।
- II. प्रभावात्मक अनुशासन में क्योंकि शिक्षक के व्यक्तित्व को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है, इसलिये इस व्यवस्था में बच्चों को रुचियों, योग्यताओं, इच्छाओं तथा आवश्यकताओं की प्रायः उपेक्षा की जाती है। इस दशा में बच्चों को व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं हो पाता।
- III. प्रभावात्मक अनुशासन में अनुकरण के सिद्धान्त को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है और यह स्वीकार किया जाता है कि शिक्षक के व्यक्तित्व तथा आचरण का अनुकरण करके बालक अपने आचरण और व्यक्तित्व का विकास करते हैं। इसलिये बालकों में अध्यापकों के गुणों एवं अवगुणों दोनों का ही विकास होने लगता है।
- IV. प्रभावात्मक अनुशासन में बालक का स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता। वह केवल शिक्षक की प्रतिलिपि ही बन पाता है, लेकिन वास्तव में प्रत्येक बालक का अपना स्वतन्त्र ‘व्यक्तित्व’ होना चाहिये।
- V. इस सिद्धान्त में बच्चों के लिये स्वतन्त्र विचार, तर्क तथा निर्णय आदि के लिये कोई स्थान नहीं है। इसलिये बालकों में स्वतन्त्र विचार शक्ति तथा निर्णय लेने की योग्यता का विकास नहीं हो पाता, इसलिये व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं होता।

उपर्युक्त विवेचन से प्रभावात्मक अनुशासन के गुणदोषों का परिचय प्राप्त होता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उत्तम होते हुए भी यह सिद्धान्त भी पूर्ण एवं दोषमुक्त नहीं है। इस सिद्धान्त

को लागू करने में सर्वप्रमुख समस्या उत्तम तथा आदर्श शिक्षक की समस्या है। आदर्श शिक्षक के अभाव में इस व्यवस्था को लागू ही नहीं किया जा सकता।

(3) मुक्त्यात्मक अनुशासन सिद्धान्त

मुक्त्यात्मक अनुशासन सिद्धान्त का प्रतिपादन करने का श्रेय प्रमुख रूप से रूसो तथा स्पेन्सर को है। इन शिक्षा दार्शनिकों ने दमनात्मक तथा प्रभावात्मक दोनों प्रकार के अनुशासन सिद्धान्तों को दोषयुक्त और अनुचित माना है तथा उनका विरोध किया है। अनुशासन के इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चों के व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास करना है। इस उद्देश्य के लिये मुक्त्यात्मक अनुशासन ही उचित है। इस सिद्धान्त के अनुसार बच्चों के अनुसार कार्य करने तथा अपना विकास करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। इस सिद्धान्त में किसी भी प्रकार के दबाव, नियन्त्रण अथवा मदन का विरोध किया गया है।

मुक्त्यात्मक अनुशासन के पक्ष में तर्क — इस सिद्धान्त के पक्ष में मुख्य रूप से निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं —

- I. मुक्त्यात्मक सिद्धान्त में बच्चों की इच्छाओं को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया जाता है तथा अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने के स्वतन्त्रता दी जाती है। इससे बच्चों का समुचित विकास सम्भव होता है।
- II. इस सिद्धान्त में किसी भी प्रकार के दमन या कठोरता का समावेश नहीं है, इसलिये बच्चों के व्यक्तित्व का विकास कुण्ठित नहीं होगा।
- III. दमन या नियन्त्रण न होने के कारण बच्चों में किसी प्रकार की मानसिक ग्रन्थियाँ, विकार या हीन भावना के विकास के अवसर नहीं आ पाते हैं, इसलिये इस प्रकार की व्यवस्था में स्वस्थ मानसिक एवं शारीरिक विकास होता है।
- IV. यह व्यवस्था वास्तव में आत्म-अनुशासन तथा आत्म-नियन्त्रण की व्यवस्था है तथा इस व्यवस्था को हर प्रकार से उत्तम स्वीकार किया जाता है।

मुक्त्यात्मक अनुशासन के विपक्ष में तर्क — इस सिद्धान्त के विपक्ष में मुख्य रूप से निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं —

- I. हर बालक में जन्म के साथ ही कुछ हद तक पाशविक प्रवृत्तियाँ भी होती हैं। यदि बच्चों पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं लगाया जाता, तो ये पाशविक प्रवृत्तियाँ अधिक विकसित हो सकती हैं। इसलिये पूरी तरह स्वतन्त्रता देने वाला सिद्धान्त सही नहीं लगता। यदि पूरी स्वतन्त्रता प्रदान कर दी जाये, तो अनेक बालकों के समाज-विरोधी बने की सम्भावना रहती है।
- II. पर्याप्त बौद्धिक विकास होने तथा विचार तथा विवेक शक्ति के विकास न होने के कारण अनेक बातों के लिये बच्चों को कुशल दिशान की आवश्यकता होती है और यह निर्देशन शिक्षक के आदेश के रूप में होना चाहिये। मुक्त्यात्मक अनुशासन में इस प्रकार के निर्देशन का कोई स्थान नहीं है, इसलिये इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

- III. विद्यालय शिक्षा की एक औपचारिक संस्था है। इसलिये संस्था में सुचारु रूप से कार्य करने के लिये व्यवस्था तथा अनुशासन का होना नितान्त आवश्यक है, लेकिन अनुशासन का मुक्त्यात्मक सिद्धान्त पूरी स्वतन्त्रता का समर्थन करता है तथा इस स्थिति में अनुशासन तथा अव्यवस्था को कैसे लागू किया जा सकता है ?
- IV. बालक स्वभाव से आत्म-नियन्त्रण तथा आत्म-अनुशासन के विरुद्ध होते हैं तथा ऐसा करना उनके लिय कठिन भी होता है। अतएव इस सिद्धान्त को कैसे लागू किया जा सकता है।
- V. स्वतन्त्रता देने से बालक अपने अधिकारों की ओर अधिक आकाँक्षा रखने लगते हैं, लेकिन वे अपने कर्तव्यों के प्रति बिल्कुल ध्यान नहीं देते।

मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुशासन की आवश्यकता है तथा शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन की और भी अधिक आवश्यकता होती है। छात्र जीवन में बालक अनुशासन में रहना सरलता से सीख लेता है और जीवन में अनुशासन में रहने की आदत हो जाती है। आधुनिक युग में विद्यालयों में उचित अनुशासन नहीं है तथा अनुशासनहीनता की समस्या मुख्य शैक्षिक समस्या के रूप में विकसित हो चुकी है। इस समस्या के समाधान के उपायों को जानने से पहले अनुशासनहीनता के कारणों को जान लेना आवश्यक है। शिक्षा में व्याप्त अनुशासनहीनता को मुख्य रूप से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है— पहले वर्ग में उस अनुशासनहीनता को शामिल करते हैं, जो मुख्य रूप से कक्षा में पायी जाती है तथा दूसर वर्ग में वह अनुशासनहीनता आती है जो छात्रों द्वारा कक्षा से बाहर दिखाई जाती है।